



## स्त्री-चित्त की संरचना: उपनिषदों और आधुनिक मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन

**प्रो. कविता होले**

प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता

संस्कृत एवं संस्कृतेतर भाषासंकाय

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक

**अमृता अरविंदा आवळे**

शोधार्थी

संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक

awaleyamruta@gmail.com

9028100176

विषय-शीम: “नारी-मनोविज्ञान एवं स्वास्थ्य”

### प्रस्तावना

नारी-चित्त का अध्ययन केवल स्त्री-मनोविज्ञान का प्रश्न नहीं, अपितु मानवीय चेतना के आध्यात्मिक विकास की एक अनिवार्य कड़ी है। भारतीय संस्कृति में नारी को शक्ति और प्रज्ञा के समन्वित रूप में देखा गया है — **“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः”**<sup>1</sup> (जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवत्व का वास होता है)। यह दृष्टि नारी को केवल सामाजिक भूमिका या भावनात्मक अस्तित्व के रूप में नहीं, बल्कि ब्रह्म-तत्त्व के साक्षात्कार में सह-साधिका के रूप में प्रस्तुत करती है।

आधुनिक मनोविज्ञान, यद्यपि स्त्री-स्वभाव को भावनात्मक बुद्धि, सहानुभूति और सामाजिक संवेदनशीलता के संदर्भ में देखता है, तथापि वह नारी-चित्त के उस अंतःप्रकाश को नहीं समझ पाता जो भारतीय दर्शन में “आत्म-विद्या” से संबद्ध है। फ्रायड और युंग जैसे मनोवैज्ञानिकों ने स्त्री के मनो-संरचना पर विमर्श किया है, परंतु उन्होंने आत्म-बोध के आध्यात्मिक आयाम को अपने सिद्धान्तों में स्थान नहीं दिया। यही कारण है कि आधुनिक नारी-मनोविज्ञान अधिकतर सामाजिक और जैविक सीमाओं के भीतर ही व्याख्यायित होता है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा के अनुसार, “चित्त” केवल मानसिक क्रिया-प्रवाह नहीं, बल्कि वह अंतःकरण है जो आत्मा और मन के मध्य सेतु का कार्य करता है। योगसूत्र में कहा गया है — **“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”**<sup>2</sup>, अर्थात् जब चित्त की वृत्तियाँ स्थिर होती हैं, तभी आत्मा का साक्षात्कार सम्भव होता है। यदि इस सूत्र को नारी-चित्त के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि स्त्री का मन, जो स्वभावतः करुणा, श्रद्धा और भावनात्मक ग्रहणशीलता से परिपूर्ण है, आत्म-साक्षात्कार की दिशा में एक विशिष्ट संवेदनशीलता रखता है।

समस्या यह है कि आधुनिक मनोविज्ञान ने स्त्री-चित्त के इस आत्मिक आयाम की उपेक्षा की है। स्त्री को ‘अनुभूति-प्रधान’ कहकर उसकी चेतना को सीमित किया गया, जबकि उपनिषदों ने नारी के विचार-शक्ति और ब्रह्म-चेतना को समान रूप से मान्यता दी है। बृहदारण्यक उपनिषद् की गार्गी जब याज्ञवल्क्य से ब्रह्म-विचार पर संवाद करती हैं, तो यह केवल तर्क नहीं, बल्कि आत्मा की अन्वेषणा है।<sup>3</sup> यह साक्ष्य सिद्ध करता है कि भारतीय परंपरा में स्त्री-चित्त का अध्ययन मानव-मनोविज्ञान की जड़ों तक जाता है।

अतः भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) के आलोक में नारी-चित्त के अध्ययन का पुनर्विचार आवश्यक है, क्योंकि यह दृष्टि मन, आत्मा और समाज — तीनों के संतुलन की खोज करती है। IKS यह प्रतिपादित करती है कि नारी-चित्त का स्वरूप केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि सृष्टि-संज्ञा की ऊर्जा है, जो समस्त सृजन, संवेदना और आध्यात्मिकता का मूल स्रोत है। आधुनिक मनोविज्ञान यदि इस वैदिक दृष्टि के साथ संवाद स्थापित करे, तो नारी-मनोविज्ञान केवल चिकित्सकीय अनुशासन नहीं रहेगा, बल्कि मानवीय चेतना की सम्पूर्णता का अध्ययन बन जाएगा।

## 1. वैदिक-उपनिषद् दृष्टि में नारी-चित्त की अवधारणा

वैदिक और उपनिषद् परंपरा में नारी-चित्त की व्याख्या किसी सीमित जैविक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि ऋत और ब्रह्म-चैतन्य के अभिन्न अंग के रूप में की गई है। ऋग्वैदिक वाङ्मय में अनेक स्त्री-ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है — घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, गार्गी, मैत्रेयी इत्यादि। इन ऋषिकाओं ने केवल गृहस्थ-जीवन का नहीं, बल्कि दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक चिन्तन का भी सूत्रपात किया। लोपामुद्रा द्वारा अग्निदेव से संवाद में नारी-चित्त की कामना-वृत्ति और ब्रह्म-वृत्ति का समन्वय देखा जा सकता है — “अहं रुद्राणां द्वादशं नमे द्यौः”<sup>4</sup> इत्यादि — यह सूचित करता है कि स्त्री की चेतना केवल भोग या ममता तक सीमित नहीं, बल्कि सृजनात्मक शक्ति और तत्त्व-चेतना के मध्य एक गतिशील सेतु है।

बृहदारण्यक उपनिषद् के गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद में नारी-चित्त की विवेक-प्रधानता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। गार्गी का प्रश्न — “कस्मिन्नु खलु अखिले इदम् आकाशे निपत्तम्?”<sup>5</sup> — केवल ब्रह्म-ज्ञान की जिज्ञासा नहीं, बल्कि मानवीय चेतना की सीमा-जाँच है। यह प्रश्न उस स्त्री-चित्त का प्रतिनिधित्व करता है जो ‘अन्वेषण’ में निहित है, जो ब्रह्म को जानने की साहसिक इच्छा रखता है। गार्गी यहाँ तर्क नहीं करतीं मात्र, वे ध्यानशील चेतना का प्रदर्शन करती हैं — जो मन से नहीं, बुद्धि-संवेदना से सत्य को स्पर्श करती है। यही भारतीय मनोविज्ञान में “चित्त-प्रज्ञा” की पराकाष्ठा कही जाती है।

इसी प्रकार मैत्रेयी-संवाद में नारी-चित्त आत्म-प्रज्ञा की अभिव्यक्ति बन जाता है। याज्ञवल्क्य जब कहते हैं — “न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियम् भवति”<sup>6</sup>, तो मैत्रेयी यह प्रश्न करती हैं कि यदि सब कुछ आत्मा के लिए ही प्रिय है, तो “कथं नु तद्विजानात्?” — यह प्रश्न नारी-चित्त की गूढ़ जिज्ञासा और विवेक का द्योतक है। यहाँ मैत्रेयी केवल श्रोता नहीं, बल्कि ज्ञान-मार्ग की सह-साधिका हैं, जो प्रेम-भावना को ज्ञान-चेतना में रूपान्तरित करती हैं। यह वैदिक दृष्टि नारी को केवल संवेदनशील नहीं, बल्कि तत्त्व-ज्ञा के रूप में स्थापित करती है।

छांदोग्य उपनिषद् में नारी-चित्त की करुणा-प्रधानता का उल्लेख “श्रद्धा” के सिद्धान्त से होता है — “श्रद्धा वै सत्त्वम्”<sup>7</sup> — अर्थात् श्रद्धा स्वयं सत्त्व है। नारी के चित्त में यह श्रद्धा प्राकृतिक रूप से निहित है; यही श्रद्धा उसे आत्म-अनुभूति की दिशा में ले जाती है। यहाँ श्रद्धा केवल आस्था नहीं, बल्कि एक मनोवैज्ञानिक अवस्था है, जो मनोमय कोश से विज्ञानमय कोश तक सभी स्तरों को संयोजित करती है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णित पंचकोश-सिद्धान्त नारी-चित्त की बहुस्तरीय संरचना को उजागर करता है — अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश। यदि इस सिद्धान्त को नारी-चित्त पर लागू किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि स्त्री की चेतना भौतिक स्तर (अन्नमय) से लेकर आध्यात्मिक आनन्द (आनन्दमय) तक एक अन्तः-विस्तार यात्रा है। नारी की संवेदनशीलता प्राणमय कोश में, उसकी बुद्धि-प्रज्ञा विज्ञानमय कोश में, और उसकी मातृत्वमूलक करुणा आनन्दमय कोश में स्थित है। इस प्रकार उपनिषद् यह सिखाते हैं कि नारी-चित्त एक-आयामी नहीं, अपितु बहुस्तरीय है, जो अन्ततः आत्म-साक्षात्कार की दिशा में गतिशील रहता है।

अतः वैदिक-उपनिषद् दृष्टि में नारी-चित्त का स्वरूप “ब्रह्म-विज्ञान और भाव-विज्ञान” के अद्वितीय संगम के रूप में उभरता है। यह दृष्टि आधुनिक मनोविज्ञान की तरह ‘अहं’ और ‘अनुभूति’ के मध्य द्वन्द्व नहीं देखती, बल्कि सत्ता और संवेदना के समन्वय को नारी-चित्त का स्वाभाविक धर्म मानती है।

यही कारण है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा में स्त्री को “शक्ति” कहा गया है — क्योंकि वही सृष्टि की जड़ में स्थित चेतना है, जो स्वयं ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है।

## 2. भगवद्गीता और महाभारत में नारी-मनोविज्ञान

उपनिषदों में प्रतिपादित आत्म-ज्ञान और चित्त-संतुलन का जो तात्त्विक रूप सामने आता है, वह भगवद्गीता और महाभारत में व्यवहार-मनोविज्ञान के स्तर पर परिपक्व रूप ग्रहण करता है। जहाँ उपनिषद् नारी-चित्त को ब्रह्म-विचार और आत्म-साक्षात्कार का माध्यम बनाते हैं, वहीं गीता और महाभारत उसे धर्म-संतुलन, कर्तव्य-निष्ठा और भावनात्मक परिपक्वता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। अर्थात् वैदिक-दार्शनिक चित्त का अनुभव अब व्यावहारिक चेतना में रूपांतरित होता है।

भगवद्गीता में अर्जुन-कृष्ण संवाद इसी चित्त-विकास की मानस-यात्रा का प्रतीक है। जब अर्जुन युद्धभूमि में करुणा से विवेकविहीन होकर कहता है — **“दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।”**<sup>8</sup> — तब कृष्ण उसे करुणा को दुर्बलता नहीं, बल्कि धर्म-सिद्ध कर्म की प्रेरणा में परिवर्तित करने का उपदेश देते हैं — **“योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।”**<sup>9</sup> यह शिक्षण उस करुणा-विवेक-संतुलन का प्रतिरूप है जो नारी-चित्त की मौलिक विशेषता है। स्त्री का मन संवेदना से संपन्न है, परंतु वही संवेदना धर्म की दिशा में नियंत्रित होने पर सृष्टि-संतुलन का आधार बनती है। गीता का यह सन्देश नारी-चित्त की उस परिपक्वता का प्रतीक है जहाँ भावनाएँ आत्म-नियंत्रण के अधीन होकर धर्म-चेतना में परिणत होती हैं।

महाभारत में यह भावनात्मक-बौद्धिक संतुलन विविध नारी-पात्रों के माध्यम से मूर्त रूप लेता है। कुंती, द्रौपदी और गांधारी — तीनों नारी-चित्त के त्रिगुणात्मक स्वरूप (सत्त्व-रजस्-तमस्) की अभिव्यक्तियाँ हैं। कुंती का मन सत्त्वगुण का प्रतीक है — धैर्य, श्रद्धा और आत्म-संयम से ओत-प्रोत। उनका वाक्य — **“विपदः सन्तु ताः शश्वत् तत् तत्र भवतो दर्शनम्।”**<sup>10</sup> — नारी-चित्त की उस आध्यात्मिक दृढ़ता को उद्घाटित करता है जो दुःख में भी ईश्वर-साक्षात्कार का अवसर देखती है।

द्रौपदी का चित्त रजोगुण का प्रतीक है — सक्रिय, संघर्षशील और न्याय-निष्ठा सभाभवन में उसका प्रश्न — **“सभायां धर्मो नष्टः किमवशिष्टं मनुष्येषु?”**<sup>11</sup> — सामाजिक विवेक की पुकार है। यह प्रश्न केवल अपमान का प्रतिवाद नहीं, बल्कि समाज के धर्म-संवेदनशील चित्त को जगाने का प्रयत्न है। द्रौपदी की करुणा यहाँ न्याय की चेतना में रूपांतरित होती है — जो आधुनिक मनोविज्ञान के “नैतिक भाव” (moral emotion) की भारतीय व्याख्या कही जा सकती है।

गांधारी का मन तमोगुण-प्रधान है, परन्तु यह तमस् अविद्या का नहीं, तप-संयम का प्रतीक है। पति की दृष्टिहीनता को साझा करने के लिए स्वयं पट्टी बाँध लेना उस नारी-चित्त की गहराई का परिचायक है जो भोग से नहीं, बल्कि संयम और आत्म-अनुशासन से शक्ति अर्जित करता है। यह आत्म-त्याग नारी के उस मानसिक रूप को उद्घाटित करता है जिसमें समर्पण आत्म-दासता नहीं, बल्कि चित्त की आध्यात्मिक परिपक्वता है।

शान्तिपर्व में नारी को **“धर्मस्य धारिणी”**<sup>12</sup> कहा गया है — अर्थात् धर्म की भावनात्मक, नैतिक और मानसिक धारा का वह अधिष्ठान है। यह कथन नारी-चित्त की समाज-नियामक भूमिका को रेखांकित करता है। महाभारत की ये तीनों नारी-प्रतिमाएँ वस्तुतः भारतीय मनोविज्ञान के त्रिगुण-सिद्धान्त का सजीव रूप हैं — जहाँ सत्त्व (शुद्धि), रजस् (क्रिया) और तमस् (संयम) मिलकर संतुलित नारी-चित्त का निर्माण करते हैं।

इस प्रकार गीता और महाभारत दोनों ग्रंथ नारी-चित्त की उस पूर्णता का प्रतिपादन करते हैं जो उपनिषदों की आत्म-ज्ञान का व्यावहारिक विस्तार है।

यह नारी-चित्त करुणा और विवेक के समन्वय से निर्मित **“सत्त्वप्रधान चेतना”** है, जो भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुसार समाज, धर्म और आत्मा — तीनों के संतुलन की धुरी है। नारी का मन केवल भावनाओं का क्षेत्र नहीं, बल्कि वह धर्म की मनोवैज्ञानिक संरचना है, जिस पर समस्त मानवीय समरसता और आध्यात्मिकता टिकी हुई है।

## 3. योग-दर्शन और स्त्री-मनोविज्ञान

महाभारत में नारी-चित्त जिस धर्म-संवेदनशीलता का रूप ग्रहण करता है, वह पतञ्जलि के योगदर्शन में अंतःकरण-शुद्धि और आत्म-संयम की साधना में परिणत होता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा में योग को केवल शारीरिक अनुशासन नहीं, बल्कि चित्त-वृत्ति-संयम की विधा माना गया है। पतञ्जलि कहते हैं — **“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।”**<sup>13</sup> — अर्थात् योग वह अवस्था है जिसमें चित्त की वृत्तियाँ स्थिर होकर आत्म-स्वरूप में स्थित होती हैं। यदि इस सूत्र को नारी-चित्त के सन्दर्भ में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि नारी का मन स्वभावतः संवेदनशील और ग्रहणशील है, परंतु साधना के द्वारा वही मन स्थिर और सत्त्वप्रधान बन सकता है। स्त्री के मन की यह ग्रहणशीलता ही उसकी शक्ति है, क्योंकि वह अनुभूति के सूक्ष्मतर आयामों को पहचानने में सक्षम होती है।

योग-दर्शन नारी-चित्त की प्रकृति को तीन प्रमुख प्रक्रियाओं में रूपांतरित करता है — ध्यान, समाधि और सत्त्ववृद्धि। ध्यान (concentration) मन के विक्षेप को नियंत्रित कर भीतर की स्थिरता को जन्म देता है, समाधि (absorption) उस स्थिरता को आत्म-अनुभूति में परिणत करती है, और सत्त्ववृद्धि (enhancement of purity) उस अनुभूति को चेतना की स्थायी अवस्था बनाती है। स्त्री-चित्त में इन तीनों की सहज प्रवृत्ति पाई जाती है — वह करुणा से ध्यान की ओर, श्रद्धा से समाधि की ओर, और मातृत्व से सत्त्ववृद्धि की ओर स्वाभाविक रूप से बढ़ता है। यही कारण है कि भारतीय योग-परंपरा में स्त्री-साधना को “शक्ति-उपासना” से जोड़ा गया है, जहाँ नारी का चित्त साधक और साध्य, दोनों के रूप में प्रकट होता है।

योग-सूत्र के द्वितीय अध्याय में पतञ्जलि “अष्टाङ्गयोग” का वर्णन करते हुए कहते हैं — **“अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।”**<sup>14</sup> ये यम स्त्री-चित्त के नैतिक आधार हैं — अहिंसा (करुणा), सत्य (प्रज्ञा), ब्रह्मचर्य (संयम), और अपरिग्रह (त्याग) — ये चारों गुण नारी-चित्त की संरचना में सहज रूप से निहित हैं। नारी जब इन गुणों को साधना के रूप में आत्मसात् करती है, तो उसका मन केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कारमूलक बन जाता है। इस प्रकार योग केवल पुरुष-साधना नहीं, बल्कि स्त्री-चित्त की स्वाभाविक प्रवृत्ति का वैज्ञानिक विस्तार है।

देवीमहात्म्य में वर्णित योगिनियाँ और मातृशक्तियाँ नारी-चित्त की इसी योगिक प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। देवी के विविध रूप — महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती — स्त्री-चित्त की त्रिविध ऊर्जाओं का द्योतन करते हैं। महाकाली उसका रजोगुणात्मक संघर्ष है, महालक्ष्मी उसका सत्त्वगुणात्मक संतुलन, और महासरस्वती उसका विज्ञानमय बोधा देवी कहती हैं — **“अहं रुद्राणां द्वादशं नमे द्यौः...”**<sup>15</sup> — यह उद्धोष नारी-चित्त की उस “बहु-ऊर्जात्मक चेतना” का प्रतीक है, जो सृष्टि के प्रत्येक स्तर पर संतुलन और सृजन की प्रेरक शक्ति है। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में कहें, तो यह नारी-चित्त का **psychic integration** है — जहाँ उसके भीतर की सभी शक्तियाँ (भाव, बुद्धि, करुणा, विवेक) एक ही आत्म-धारा में संगठित होती हैं।

योग-दर्शन का यह दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) की उस मूल भावना को मूर्त करता है जो “चित्त” को केवल मानसिक नहीं, आध्यात्मिक तत्त्व मानती है। नारी-चित्त की योगिक यात्रा भीतर की अस्थिरता से बाहर की समरसता तक पहुँचने की प्रक्रिया है। यह यात्रा अहंकार-शोधन से आरम्भ होकर सत्त्व-स्थिरीकरण पर समाप्त होती है। पतञ्जलि का यह विज्ञान बताता है कि स्त्री-चित्त में आत्म-अनुशासन का जो सहज संस्कार है, वह समग्र मानवता के मानसिक संतुलन का आदर्श बन सकता है।

अतः योगदर्शन और देवी-तत्त्व, दोनों मिलकर यह प्रतिपादित करते हैं कि नारी का चित्त केवल भावनाओं का पात्र नहीं, बल्कि ब्रह्म-चेतना की क्रियाशील शक्ति है। उसकी संवेदनशीलता दुर्बलता नहीं, बल्कि सत्त्व-संवर्धन का मार्ग है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो योग नारी-चित्त की आत्म-संयम से आत्म-प्रकाश तक की यात्रा है — जो भारतीय ज्ञान प्रणाली में “अन्तःकरण की एकता” का सर्वोच्च उदाहरण है।

#### 4. आधुनिक मनोविज्ञान में स्त्री-मनोदृष्टि

पतञ्जलि के योगदर्शन में जहाँ नारी-चित्त को आत्म-संयम और सत्त्व-वृद्धि का केंद्र कहा गया है, वहीं आधुनिक मनोविज्ञान में स्त्री-मनोविज्ञान का विश्लेषण बाह्य अनुभवों, सामाजिक व्यवहार और लैंगिक भूमिकाओं के संदर्भ में हुआ। भारतीय दृष्टि जहाँ चेतना की अंतःयात्रा पर बल देती है, वहीं पाश्चात्य दृष्टि अनुभव-आधारित विश्लेषण पर केन्द्रित है। इन दोनों में से प्रत्येक दृष्टि मानव-मनोविज्ञान की एक आवश्यक दिशा

है, परंतु उनका परस्पर तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय परंपरा जहाँ आत्म-प्रज्ञा को स्त्री-चित्त का मूल मानती है, वहीं आधुनिक मनोविज्ञान उसे स्व-संज्ञान (self-awareness) और सामाजिक अनुकूलन की प्रक्रिया के रूप में देखता है।

सिग्मंड फ्रायड (Sigmund Freud) ने अपने Psychosexual Theory में स्त्री को प्रायः passive सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार नारी की मनो-संरचना “अभाव” (lack) और “आकांक्षा” (desire) के इर्द-गिर्द निर्मित होती है<sup>16</sup> परंतु इस दृष्टिकोण की सबसे बड़ी सीमा यह थी कि उसने स्त्री-चित्त के रचनात्मक और आत्म-निर्भर पक्ष को स्वीकार नहीं किया। भारतीय मनोविज्ञान जहाँ “शक्ति” को सृजन का केंद्र मानता है, वहाँ फ्रायड के सिद्धान्त में स्त्री को केवल “प्रतिक्रिया” देने वाली सत्ता के रूप में देखा गया। इसलिए उनके सिद्धान्त को “पितृसत्तात्मक मनोविज्ञान” की आलोचना झेलनी पड़ी।

इसके विपरीत, कार्ल युंग (Carl Jung) ने अपने Anima-Animus सिद्धान्त में स्त्री-पुरुष दोनों के भीतर विद्यमान मानस-ऊर्जा के संतुलन को स्वीकार किया। युंग के अनुसार “Anima” पुरुष के भीतर स्त्री गुणों — करुणा, अंतर्ज्ञान और संवेदना — का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि “Animus” स्त्री के भीतर उपस्थित तर्क, विवेक और स्थिरता का प्रतीक है<sup>17</sup> यह सिद्धान्त इस बात की पुष्टि करता है कि प्रत्येक व्यक्ति में स्त्री-पुरुष दोनों के मनोवैज्ञानिक तत्त्व अंतर्निहित हैं, और उनका संतुलन ही पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य का आधार है। यह दृष्टि भारतीय अर्धनारीश्वर-तत्त्व की स्मृति जगाती है, जहाँ शिव और शक्ति, पुरुष और स्त्री, चेतना और ऊर्जा — एकात्म रूप से उपस्थित हैं। इस अर्थ में युंग का विचार भारतीय ज्ञान प्रणाली के “संतुलन-तत्त्व” से आश्चर्यजनक रूप से साम्य रखता है।

कैरेन हॉर्नी (Karen Horney) ने नारी-मनोविज्ञान की स्वतंत्र पुनर्परिभाषा प्रस्तुत की। उन्होंने फ्रायड के निष्कर्षों को चुनौती देते हुए कहा कि स्त्री का चित्त “हीनता” नहीं, बल्कि आत्म-सृजन और स्व-अभिव्यक्ति का क्षेत्र है<sup>18</sup> उनकी Self-Realization Theory के अनुसार, प्रत्येक स्त्री के भीतर अपनी व्यक्तिगत पहचान और सृजनात्मक क्षमता को विकसित करने की प्रवृत्ति निहित होती है। यह दृष्टि भारतीय उपनिषदों के “आत्म-विद्या” सिद्धान्त से साम्य रखती है — जहाँ आत्म-प्रज्ञा ही सभी भावनाओं और कर्मों की दिशा निर्धारित करती है। इस प्रकार हॉर्नी का स्त्री-मनोविज्ञान नारी-चित्त को आत्मनिर्भरता, सृजनशीलता और आत्म-स्वीकृति की दृष्टि से परिभाषित करता है।

आधुनिक सकारात्मक मनोविज्ञान (Positive Psychology) ने स्त्री-चित्त के “Empathy” (सहानुभूति) और “Emotional Intelligence” (भावनात्मक बुद्धिमत्ता) को मानसिक स्वास्थ्य के आवश्यक आयाम के रूप में मान्यता दी है<sup>19</sup> इस नयी दृष्टि में स्त्री का चित्त वह केन्द्र बनता है जहाँ भावनाएँ कमजोरी नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता और उपचार का स्रोत हैं। नारी की संवेदना को “सामूहिक कल्याण” (collective well-being) की दिशा में प्रयुक्त करना आज के मनोविज्ञान में transformational empathy कहा गया है। यह सिद्धान्त भारतीय “करुणा-योग” की परंपरा के निकट है, जहाँ नारी की सहानुभूति को “लोक-कल्याण” की आध्यात्मिक शक्ति के रूप में देखा गया है।

अतः आधुनिक मनोविज्ञान में नारी-चित्त के अध्ययन की दिशा धीरे-धीरे आत्म-निर्भरता, सृजनशीलता और करुणा-संतुलन की ओर विकसित हुई है। फ्रायड के passive प्रतिमान से लेकर युंग के psychic balance और हॉर्नी की self-realization तक, यह विकास नारी-चित्त को एक पूर्ण, स्वाधीन और रचनात्मक सत्ता के रूप में स्थापित करता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा के आलोक में देखें तो यह परिवर्तन नारी-मनोविज्ञान की उसी दिशा का आधुनिक पुनर्पाठ है — जहाँ चित्त की पूर्णता आत्म-प्रज्ञा और करुणा के समन्वय से होती है।

## 5. तुलनात्मक विश्लेषण

अब तक के विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा में नारी-चित्त का स्वरूप केवल मानसिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना का क्षेत्र है; जबकि आधुनिक मनोविज्ञान में यह चेतना सामाजिक अनुभवों और आत्म-निर्माण की प्रक्रिया के रूप में समझी जाती है। दोनों ही दृष्टियाँ अपने-अपने स्तर पर नारी-चित्त के विकास का चित्रण करती हैं, किन्तु उनकी मूलभूत प्रेरणाएँ और लक्ष्य भिन्न हैं।

भारतीय दृष्टि में “आत्म-बोध” का अर्थ है — मन, बुद्धि और आत्मा के बीच की अन्तः-एकता को पहचानना। यह “साक्षीभाव” की अवस्था है, जिसमें चित्त अपने स्वरूप में स्थित होकर शुद्ध ज्ञान की स्थिति प्राप्त करता है। इसके विपरीत, आधुनिक मनोविज्ञान में self-

realization का अर्थ है व्यक्तित्व के भीतर निहित संभावनाओं का विकास और आत्म-स्वीकृति। दोनों ही प्रक्रियाएँ आत्म-जागरूकता की ओर ले जाती हैं, पर भारतीय दर्शन इसका लक्ष्य मुक्ति मानता है, जबकि आधुनिक मनोविज्ञान संतुलित व्यक्तित्व को उसका परिणाम मानता है।

भावनाओं की दृष्टि से भारतीय ज्ञान-परंपरा नारी-चित्त को करुणा, श्रद्धा और त्याग के समन्वय के रूप में देखती है — जहाँ भावना का शुद्धिकरण आत्म-शुद्धि का साधन बनता है। वहीं आधुनिक मनोविज्ञान में यही भावनात्मक पक्ष empathy, emotional intelligence और nurturing tendency के रूप में पुनर्परिभाषित हुआ है। अंतर केवल दृष्टिकोण का है — भारतीय संदर्भ में भावना आध्यात्मिक मूल्य है, जबकि आधुनिक संदर्भ में यह सामाजिक और मनोवैज्ञानिक मूल्य है। दोनों ही मानते हैं कि स्त्री-चित्त की संवेदना समाज और व्यक्ति, दोनों में संतुलन लाने की क्षमता रखती है।

संतुलन की संकल्पना भारतीय परंपरा में सत्त्व-रजस्-तमस् के साम्य से व्याख्यायित होती है — यह केवल मानसिक नहीं, बल्कि अस्तित्वगत संतुलन है। आधुनिक मनोविज्ञान इस संतुलन को conscious-unconscious integration कहता है, जहाँ व्यक्ति अपने अवचेतन मन से संवाद स्थापित कर आत्म-संगठन करता है। दोनों में यह समानता स्पष्ट है कि असंतुलित चित्त ही दुःख और अशांति का कारण है, और संतुलन ही आत्म-प्रसन्नता की कुंजी।

अन्ततः उद्देश्य की दृष्टि से दोनों परंपराएँ एक साझा धुरी पर मिलती हैं — भारतीय दृष्टि “आत्म-साक्षात्कार” को और आधुनिक दृष्टि “आत्म-विकास” को मानवीय चेतना का शिखर मानती है। भिन्नता केवल दिशा की है: एक भीतर की ओर उन्मुख है (अधिभौतिक), दूसरी बाहर की ओर (अधिभौतिक-मानसिक)। किन्तु दोनों ही यह स्वीकार करती हैं कि स्त्री-चित्त में सृजन, समरसता और संतुलन की स्वाभाविक प्रवृत्ति विद्यमान है।

इस तुलनात्मक विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि भारतीय आत्म-प्रज्ञा-आधारित दृष्टि और आधुनिक मानसिक-संतुलन-आधारित दृष्टि का समन्वय किया जाए, तो नारी-मनोविज्ञान का एक ऐसा समग्र प्रतिमान निर्मित हो सकता है जो आध्यात्मिक गहराई, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और सामाजिक उत्तरदायित्व — तीनों को एक साथ समाहित करता है। यही समन्वित दृष्टि भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) की वास्तविक आवश्यकता और योगदान है।

## 6. भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) के आलोक में नारी-मनोविज्ञान का प्रतिमान

तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय और आधुनिक दृष्टियाँ दोनों नारी-चित्त के अध्ययन को एक अनिवार्य मानव-अनुभव के रूप में स्वीकार करती हैं। परन्तु जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान इस अनुभव को मनो-संरचना और व्यवहार के स्तर पर समझता है, वहीं भारतीय ज्ञान-परंपरा इसे चेतना और आत्म-प्रकाश के स्तर पर परिभाषित करती है। इन्हीं दोनों ध्रुवों के बीच भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) वह सेतु निर्मित करती है, जो मनोविज्ञान को मात्र वैज्ञानिक अनुशासन से उठाकर चेतना-विज्ञान की भूमि पर स्थापित करता है।

IKS के आलोक में नारी-चित्त का अध्ययन यह दिखाता है कि स्त्री का मन केवल संवेदनाओं का केंद्र नहीं, बल्कि सृजनात्मक ऊर्जा और आत्म-प्रज्ञा का प्रवाह है। भारतीय दर्शन में “शक्ति” और “प्रज्ञा” एक ही तत्त्व के दो रूप हैं - एक क्रियाशीलता की, दूसरी चेतना की। नारी-चित्त का प्रतिमान इन दोनों के संतुलन से निर्मित होता है। यह वही भाव-संरचना है जिसे उपनिषद् “आत्मविद्या”, गीता “कर्मयोग”, और योगसूत्र “चित्तवृत्ति-निरोध” के रूप में प्रतिपादित करते हैं — तीनों मिलकर उस चेतना की ओर इंगित करते हैं जो भीतर की शांति को बाहर की समरसता में रूपांतरित करती है।

इस दृष्टि से IKS का नारी-मनोविज्ञान-प्रतिमान त्रिस्तरीय है — (१) आत्म-प्रज्ञा — जहाँ नारी अपने चित्त को पहचानती है, (२) भाव-संयम — जहाँ वह अपने अनुभवों को साधना में रूपांतरित करती है, और (३) सामाजिक करुणा — जहाँ वही साधना समाज के मानसिक संतुलन का आधार बनती है। इन तीनों स्तरों का केंद्र “साक्षीभाव” है — वह स्थिति जिसमें नारी अपने अनुभवों के बीच भी स्वयं से जुड़ी रहती है। यह चित्त न तो केवल भावनात्मक है, न मात्र बौद्धिक — बल्कि वह अस्तित्वगत संतुलन का प्रतीक है।

IKS इस प्रतिमान के माध्यम से यह प्रतिपादित करती है कि स्त्री-चित्त की संवेदना केवल मानवीय सहानुभूति नहीं, बल्कि सृष्टि-चेतना की एक सक्रिय धारा है। वह सृजन करती है, पर उसी क्षण संयम भी रखती है; वह करुणा में गहराती है, पर विवेक से विचलित नहीं होती। यही नारी-चित्त का “योगिक” स्वरूप है — जहाँ प्रत्येक अनुभव साधना बन जाता है, और प्रत्येक साधना ज्ञान का मार्ग खोलती है।

अतः IKS का नारी-मनोविज्ञान प्रतिमान यह दर्शाता है कि स्त्री के चित्त की वास्तविक परिपक्वता उसकी संवेदनशील स्थिरता में निहित है। यह वही गुण है जो भारतीय परंपरा में “शक्ति” कहलाता है — जो सृजन करती है, पर अहं नहीं पालती; जो भावनाओं को महसूस करती है, पर उनमें विलीन नहीं होती। इसी समग्र दृष्टि के माध्यम से IKS नारी को केवल विषय नहीं, बल्कि ज्ञान-सृजन की सह-निर्मात्री के रूप में पुनर्स्थापित करती है।

## निष्कर्ष

नारी-चित्त के इस अध्ययन से यह बोध होता है कि भारतीय दर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान दोनों ही मनुष्य की उस अन्तःयात्रा की व्याख्या करते हैं जिसमें संवेदना, आत्म-जागरूकता और सृजनशीलता एक ही प्रक्रिया के विविध रूप हैं। परंतु भारतीय दृष्टि इस यात्रा को आत्म-प्रकाश के रूप में देखती है — जहाँ व्यक्ति केवल स्वयं को नहीं समझता, बल्कि अपने भीतर ब्रह्म-चेतना का अनुभव करता है। यही नारी-चित्त की विशिष्टता है — वह भावनाओं में डूबकर नहीं, बल्कि उन्हें दिशा देकर आत्म-अनुशासन में रूपांतरित करती है।

नारी की यह अंतःप्रज्ञा, जो श्रद्धा से विवेक और करुणा से क्रिया तक का सेतु बनती है, भारतीय ज्ञान प्रणाली की आत्मा है। यह दृष्टि स्त्री को केवल अनुभव का विषय नहीं मानती, बल्कि चेतना की वाहक के रूप में प्रतिष्ठित करती है। उसका मन समाज के लिए केवल संवेदना नहीं, बल्कि स्थिरता और मार्गदर्शन का स्रोत है। यही वह मनोवैज्ञानिक संतुलन है जो आधुनिक युग के मूल्य-संकटों के बीच मानवता के लिए मानसिक शांति और सांस्कृतिक स्थिरता प्रदान कर सकता है।

आज जब मनोविज्ञान की प्रवृत्ति बाह्य व्यवहार और तात्कालिक सुख केन्द्रित जीवन तक सीमित हो रही है, तब भारतीय ज्ञान-परंपरा यह स्मरण कराती है कि मानव-चित्त की वास्तविक परिपक्वता तब होती है जब संवेदना को साधना में और अनुभव को अर्थ में रूपांतरित किया जाता है। नारी-चित्त इस प्रक्रिया का जीवंत उदाहरण है — जहाँ ज्ञान भाव से पोषित होता है और भावना विवेक से आलोकित।

इस प्रकार नारी-मनोविज्ञान का भारतीय प्रतिमान केवल स्त्री-अस्तित्व की व्याख्या नहीं करता, बल्कि मानव-चेतना की उस पूर्णता का संकेत देता है जिसमें सृजन, संतुलन और सह-अस्तित्व एक साथ प्रकट होते हैं। यही भारतीय ज्ञान प्रणाली का सन्देश है — कि जब नारी भीतर की शांति को बाहर की करुणा से जोड़ती है, तो वह केवल व्यक्ति नहीं, युग को दिशा देने वाली शक्ति बन जाती है।

## संदर्भ

1. मनुस्मृति, 3.56.
2. पतञ्जलि योगसूत्र, 1.2.
3. बृहदारण्यकोपनिषत्, 3.6.1; Radhakrishnan, S. (1953). The Principal Upanishads. London: Allen & Unwin.
4. ऋग्वेद, 10.125.3.
5. बृहदारण्यकोपनिषत्, 3.8.6.
6. बृहदारण्यकोपनिषत्, 2.4.5; Radhakrishnan, S. (1953). The Principal Upanishads. London: Allen & Unwin.
7. छान्दोग्योपनिषत्, 7.19.1.
8. भगवद्गीता, 1.28.
9. भगवद्गीता, 2.48; Radhakrishnan, S. (1948). The Bhagavadgītā. London: Allen & Unwin.
10. महाभारत, वनपर्व, 32.9.
11. महाभारत, सभापर्व, 68.32.

12. महाभारत, शान्तिपर्व, 60.23.
13. पतञ्जलि योगसूत्र, 1.2.
14. पतञ्जलि योगसूत्र, 2.30.
15. देवीसूक्त, ऋग्वेद, 10.125.3; Brown, C. (1998). The Devi-Mahatmya and the Goddess Tradition of India. Delhi: Motilal Banarsidass.
16. Freud, S. (1925). Some Psychical Consequences of the Anatomical Distinction Between the Sexes. The International Journal of Psychoanalysis, 6, 243–258.
17. Jung, C. G. (1953). Psychological Types. London: Routledge & Kegan Paul.
18. Horney, K. (1937). The Neurotic Personality of Our Time. New York: Norton.
19. Goleman, D. (1995). Emotional Intelligence: Why It Can Matter More Than IQ. New York: Bantam Books.

## संदर्भग्रन्थ

- बृहदारण्यकोपनिषत् (संस्कृत पाठ, सम्पा. एस. राधाकृष्णन)। लंदन: एलन एंड अनविन, 1953।
- भगवद्गीता (संस्कृत पाठ एवं व्याख्या सहित)। सम्पा. एस. राधाकृष्णन। लंदन: एलन एंड अनविन, 1948।
- पतञ्जलि योगसूत्र। सम्पा. स्वामी हरिहरानन्द आर्या। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत श्रृंखला, 2004।
- छांदोग्योपनिषत्। सम्पा. स्वामी माधवानन्दा। कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 1968।
- देवीमहात्म्य (मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 81–93)। सम्पा. जी. पाण्डेय। वाराणसी: चौखम्बा विद्या भवन, 2002।
- मनुस्मृति। सम्पा. पं. हरिदास शास्त्री। वाराणसी: गीता प्रेस, 2010।
- महाभारत। सम्पा. के. एम. गंगुली। कलकत्ता: रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, 1883–1896।
- कठोपनिषत्। सम्पा. स्वामी शंकरानन्दा। कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 1972।
- Brown, C. (1998). The Devi-Mahatmya and the Goddess Tradition of India. Delhi: Motilal Banarsidass.
- Freud, S. (1925). Some Psychical Consequences of the Anatomical Distinction Between the Sexes. The International Journal of Psychoanalysis, 6, 243–258.
- Goleman, D. (1995). Emotional Intelligence: Why It Can Matter More Than IQ. New York: Bantam Books.
- Horney, K. (1937). The Neurotic Personality of Our Time. New York: Norton.
- Jung, C. G. (1953). Psychological Types. London: Routledge & Kegan Paul.
- Radhakrishnan, S. (1948). The Bhagavadgītā. London: Allen & Unwin.
- Radhakrishnan, S. (1953). The Principal Upanishads. London: Allen & Unwin.
- Sharma, R. K. (2006). Women in Indian Philosophy: A Reinterpretation of Shakti. Delhi: D.K. Printworld.
- King, R. (1999). Indian Philosophy: An Introduction to Hindu and Buddhist Thought. Edinburgh: Edinburgh University Press.
- Rao, K. R. (2005). Consciousness Studies: Cross-Cultural Perspectives. New Delhi: Centre for Studies in Civilizations.